नियमसार, १६० गाथा हो गयी। उसका आधार देते हैं। **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (६१ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—**

**णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।**
**णट्ठ-मणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं।।**

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने उपाय तो सब कहे, तो वह केवलज्ञान जब होता है, तब **ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है...** कोई बाकी नहीं। क्षेत्र और काल, अनन्त-अनन्त क्षेत्र और अनन्त काल और अनन्त-अनन्त गुण का भाव, इन सबके पार को प्राप्त है। ज्ञान सर्व

के पार प्राप्त है। आहाहा! ऐसी शक्ति है - ऐसी ताकत उसमें है कि अपनी सत्ता में रहकर जब निर्मल उत्पन्न हुआ, तब परद्रव्य को स्पर्श किये बिना परद्रव्य के क्षेत्र-काल का अन्त नहीं, (उस) सर्व को ज्ञान एक समय में जानता है। आहाहा! ऐसी आत्मा की मति है। ऐसा शक्तिवान प्रभु अन्दर है। आहाहा!

एक समय में, क्षेत्र का अन्त नहीं, उसका ज्ञान हो जाता है; काल का अन्त नहीं, उसका ज्ञान हो जाता है। भाव अनन्त-अनन्त गुण हैं। तीन काल के समय से अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! तीन काल को जाने, उससे अनन्तगुणे गुणों को जाने। एक-एक आत्मा में, एक-एक परमाणु में तीन काल के समय (उन्हें जाने)। एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। आहाहा! इसकी महत्ता की इसे खबर नहीं है। एक आत्मा है और यह देह मैं हूँ, बस। परन्तु कौन है? कैसा है? उसकी कीमत, उसकी महत्ता, उसकी महिमा... सर्वज्ञ भी, इसकी महिमा का पार नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है...** पदार्थ में सब आ गया। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव —सर्व पदार्थ से पार हो गया। आहाहा! **और दर्शन लोकालोक में विस्तृत है...** वह लोकालोक को जानता है, देखता है। दर्शन लोकालोक को देखता है। देखता है, उसका अर्थ यहाँ विस्तृत है। है, लोकालोक है - ऐसा दर्शन देखता है। आहाहा! ऐसी शक्ति है, वह व्यक्त / प्रगट हो गयी। भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान और दर्शन शक्ति, वह पर्याय— अवस्था में अनन्त-अनन्त प्रगट हो गयी। आहाहा! तब वह आत्मा का ज्ञान सर्व पदार्थों के पार को प्राप्त हुआ और दृष्टि सर्व लोकालोक में विस्तृत है। आहाहा! ऐसा प्रभु का सामर्थ्य है। तो क्या हुआ?

**सर्व अनिष्ट नष्ट हुआ है...** अपना ज्ञान, दर्शन और आनन्द अन्तर में दृष्टि करके जहाँ प्रगट हुए, वहाँ सर्व अनिष्ट नाश को प्राप्त हुआ। अनिष्ट कुछ बाकी रहा नहीं। आहाहा! बाहर की कोई चीज़ अनिष्ट नहीं है। अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता आदि अनिष्ट है। उसका नाश हो गया। आहाहा! बाहर की चीज़ इष्ट-अनिष्ट नहीं है। बाहर की चीज़ तो ज्ञेय है। ज्ञान में जाननेयोग्य ज्ञेय है। बाहर की चीज़ कोई अच्छी और बुरी—ऐसे दो भेद ज्ञेय में— जाननेयोग्य ज्ञेय में नहीं है। आहाहा! **सर्व...** आहाहा! लोग जिसे प्रीति से - प्रेम से राग करते हैं; प्रतिकूलता में द्वेष करते हैं, उस सर्व का नाश होकर, ज्ञान और दर्शन प्रगट होने से अनिष्ट नाश को प्राप्त हुआ। आहाहा! **और जो इष्ट है, वह सब प्राप्त हुआ है।**

**मुमुक्षु :** इष्ट तो पैसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसा आदि धूल है। पैसे ने पैसेवाले को मार डाला है। देखो, न! मुम्बई में हीरा की कीमती अँगूठी पहिनकर जा रहा था। बढ़िया हीरा की कीमती होगी। एक व्यक्ति - गुण्डा देख गया। गुण्डे को ख्याल आया कि इसने पहिनी है। एक गली में वह घुसा और स्वयं घुसा और ले ली, मार डाला। आहाहा! वापस उसे पहिचानता है। जो अनुकूलता के लिये थी, अँगुली की शोभा रखी, कीमती चीज़ थी। यह धूल की शोभा है। उसे मार डाला लेकर, फिर यह मुझे पहिचाने तो मारे वापस। मुझे पहिचाने तो पकड़ेगा।

**मुमुक्षु :** एक को मार डाले और दूसरे को महिमा दे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** महिमा किसे दे? देता है, ऐसा मानता है। मानता है महिमा। पैसे वाला हो, बड़ा हो, सब धूल का मालिक है। मरते हुए मुँह फट जाएगा। असाध्य पीड़ा-पीड़ा। एक की पीड़ा देखी है। दो की पीड़ा (देखी है)। 'ध्रांगध्रा' में। (संवत्) १९७६ की बात है। 'ध्रांगध्रा' में उपाश्रय के पास एक जेठालाल था। 'ध्रांगध्रा' में उपाश्रय है न! जेठाभाई था, परन्तु (संवत्) १९७६ की बात है। उसे यह हार्ट उठा। ऐसी व्याधि... ऐसी व्याधि... १९७६ के वर्ष। कहे, महाराज को बुलाओ। हम गये थे। नीचे बिस्तर में रह नहीं सके। पलंग में तो सुला नहीं सके। जेठालाल संघवी था। उपाश्रय के साथ। वे सूरचन्द संघवी थे न? आहाहा! वह पीड़ा। मांगलिक सुनने का भान नहीं रहे। लोगों ने बुलाया। इतनी पीड़ा। ऐसे बिस्तर से नीचे उतर जाए। नीचे ऐसे से ऐसे (होवे)। आहाहा!

एक वढवाण में देखा। वे कैसे कहलाते हैं? दादभावाला। दादाभाई थे और चन्दुभाई। उनके साथ मकान था। यह बात (संवत्) १९८२ की है। १९८२ के वर्ष की। उसमें से एक सेठ कोई होगा। हम बहुत पहिचानते नहीं। उसे पीड़ा उठी तो कहे, महाराज को बुलाओ। हम गये, परन्तु अन्दर... आहाहा! कहीं बैठे नहीं सके। बिछौना बिछाया था। आहाहा! इतनी उलझन। यह दशा, बापू!

यहाँ कहते हैं, जिसने ज्ञान और दर्शन (जो) भगवान आत्मा का स्वभाव-उसकी शक्ति, वह आत्मा का सत्व है। जानना-देखना तो आत्मा के सत् का सत्व है। वह जहाँ प्रगट हुआ, वहाँ अनिष्ट का नाश हो गया और इष्ट की प्राप्ति हो गयी। पूर्ण इष्ट की प्राप्ति हो गयी। यह इष्ट है। पैसा करोड़ मिले, इसलिए इष्ट की प्राप्ति और निर्धनता का नाश हुआ,

इसलिए अनिष्ट का नाश (हुआ-ऐसा नहीं है)। आहाहा! क्षयरोग हुआ और नाश हुआ कदाचित्, वह कोई अनिष्ट नहीं है। आहाहा! यह तो ज्ञान और दर्शन जिसका स्वभाव है, उसकी अपूर्णता और विपरीतता अनिष्ट है। उस सर्व अनिष्टों का नाश होकर अपनी पूर्णता प्रगट हुई, वह इष्ट की प्राप्ति हुई। वहाँ तुम्हारा पैसा-वैसा नहीं आया कि पैसा मिला (तो) इष्ट प्राप्त हो गया; स्त्री अच्छी मिली, इसलिए इष्ट प्राप्त हो गया; लड़के अच्छे मिले, अपने आप काम करते हैं, अब निवृत्त हुए; इसलिए इष्ट की प्राप्ति हुई (- ऐसा नहीं है)।

**मुमुक्षु :** अच्छे लड़के हों, उन्हें तो अच्छा कहना पड़े न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु अच्छा किसे कहना? ज्ञेय में अच्छा (ऐसी) छाप लगाई है?

**मुमुक्षु :** अपना कहना माने, इसलिए अच्छा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसी का नहीं मानता। भगवान का माने, उसका अपना माने। आहाहा!

मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। मेरी अपूर्णता भी मेरे लिये अनिष्ट है। मेरी पूर्णता, वह मेरे लिये इष्ट है। आहाहा! बात सुनी भी नहीं। कभी दरकार भी नहीं की। अरे रे! समय चला जाता है, काल चला जाता है। मृत्यु का समय है, वह बदले ऐसा नहीं है। भगवान ने देखा है कि इस समय में, इस क्षेत्र में, इस काल में देह छूटेगी। वह स्थिति उस प्रकार होनी है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि इष्ट-अनिष्ट दूसरी कोई चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। अनिष्ट तो अपनी अपूर्णता है। जो ज्ञानस्वभाव पूर्ण जानना चाहिए, उसे न जाने, अल्प जाने, वह अनिष्ट है। अल्प देखे, वह अनिष्ट है। उसका नाश होकर पूर्ण देखना-जानना हुआ, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द प्रगट हो गया। आहाहा! शरीरप्रमाण रहने पर भी मुक्ति शरीर में होती है। क्या कहा? भगवान आत्मा यहाँ रहता है। संसार भी उसकी पर्याय में यहाँ है और केवलज्ञान भी यहाँ शरीर हो, उसमें रहता है। केवलज्ञान तो ठीक, परन्तु मुक्ति तक लिया है। मुक्त हो गया तो भी यहाँ रहता है। एक समय यहाँ से मुक्त हुआ, एक समय में फिर ऐसे जाता है। वहाँ एक समय में पहुँचता है। मुक्ति हुई यहाँ मार्ग में और वहाँ पहुँचे, जहाँ सिद्धभगवान है। एक समय में। आहाहा! उसकी गति तो कैसी होगी,

लो! वहाँ झट पहुँचे हो मानो किसी गाँव में। और झट मानो झट ठीक आ गये। यहाँ तो कहे, झट और हट कुछ नहीं। आहाहा! स्वयं प्रभु अनन्त आनन्द सम्पन्न है। वह अनन्त ज्ञान और दर्शन जहाँ प्रगट हुए, वहाँ अनन्त आनन्द साथ में प्रगट हुआ। अपूर्ण आनन्द का दुःख था, वह अनिष्ट था। और पूर्ण आनन्द में, इष्ट में पूर्ण आनन्द है। अनिष्ट का नाश और इष्ट की प्राप्ति है।

यहाँ दूसरी बात यह कहनी है कि इष्ट-अनिष्ट किसी जगत की चीज़ को माने तो वह बात मिथ्याभ्रम है। आहाहा! दुनिया की किसी चीज़ को इष्ट माने, विवाह किया और पाँच-पच्चीस हजार खर्च किये और इष्ट हुआ। वह इष्ट नहीं है, प्रभु! वह तो महा अनिष्ट है। महा दुर्घटना हुई। भाई ने लिखा है—हुकमचन्दजी ने। दशलक्षणी पर्व में। स्त्री हुई तो दुर्घटना हुई। भूतों का भूतप्रेत लगा है। भूत का भूतप्रेत का लगना हुआ। अब यह दुर्घटना। आहाहा! पढ़ा है? हुकमचन्दजी की दशलक्षणी पर्व। पुस्तक बहुत सरस है। क्रमबद्ध (पर्याय) पुस्तक है। दोनों पुस्तकें बहुत अच्छी। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं... उसमें लिखा है।

इष्ट—अपनी सम्पदा पूर्ण पड़ी है, उसकी प्राप्ति, वह इष्ट है। आहाहा! और अपनी सम्पदा हीनरूप रहे, वह अनिष्ट है। आहाहा! उस सर्व का नाश हुआ। इतने शब्द में तो बहुत भरा है। इष्ट-अनिष्ट कोई चीज़ नहीं। अपने गुण की हीनता, वह अनिष्ट और पूर्णता, वह इष्ट है। बाकी कोई बाहर की चीज़ (इष्ट-अनिष्ट) नहीं। आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख एक दिन में कमाये, इसलिए आज का दिन मांगलिक। पाप का दिन है बड़ा। आहाहा! एक दिन में पच्चीस लाख कमाये, यह पूर्व का पुण्य था, वह जल गया और पैसा, वह पाप है, तो वह पापी हुआ। समझ में आया? पूर्व का पुण्य था, इसलिए पैसे मिले। परन्तु जो चीज़ मिली, वह पाप है, परिग्रह है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय और परिग्रह। वह परिग्रह पाप है। आहाहा! उसे इष्ट माने। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... आहाहा! यह थोड़े पैसे हैं तो दानादि में खर्च करूँगा, मन्दिर आदि बनाऊँगा और हम धर्म करेंगे। यह किसी प्रकार से धर्म नहीं होता।

**मुमुक्षु :** पैसा होवे तो पंच कल्याणक किया जा सकता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पंच कल्याणक की यह बात अभी चर्चा में आयी है। अभी चर्चा

में आयी है कि प्रतिष्ठा में पंच कल्याणक वह है या नहीं? यह क्या है? यह प्रवृत्ति किसकी है? शास्त्र-आधार है या अध्धर? चर्चा चली है। एक यह चली है और एक बाहुबली। बाहुबली... तो यह शल्य थी या नहीं? तीन में शल्य थी। तो क्यों केवल नहीं हुआ? वह शल्य नहीं थी। शल्य होवे तो... हो। मुनिपना नहीं होता। निःशल्यव्रती - ऐसा पाठ है। शल्यरहित हो, वह व्रती। वे बारह महीने रहे, यह तो अस्थिरता है; शल्य नहीं। अखबार में बड़ी चर्चा चली थी। और यह एक बिरधीचन्द है। प्रतिष्ठा में पंच परमेष्ठी की प्रतिष्ठा इस प्रकार करना, यह कोई विधि है? क्योंकि वे तो सब परपदार्थ हैं। पंच कल्याणक में परपदार्थ के साथ सम्बन्ध है। स्वपदार्थ के साथ उसमें कुछ सम्बन्ध नहीं। और स्व पदार्थ के आश्रय बिना... आहाहा! कहीं इष्टपना है नहीं। आहाहा! यह बात आयी।

**अनिष्ट नष्ट हुआ है...** आहाहा! अपनी अल्पज्ञ दशा दुःखरूप थी, वह नाश हुई और अपनी सर्वज्ञदशा आनन्दरूप थी, वह प्रगट हुई। आहाहा! इन दो के बीच दूसरे को इष्ट-अनिष्ट मानना, इसके बिना दूसरे को इष्ट-अनिष्ट मानना, वह मिथ्याभ्रम है। क्या कहा? आहाहा! अपूर्ण अवस्था, वह अनिष्ट और पूर्ण अवस्था, वह इष्ट। इसके अतिरिक्त किसी भी दूसरी चीज़ को इष्ट-अनिष्ट मानना, वह भ्रमणा और मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बात है। पूरी दुनिया का फेरफार कर डाले, तब धर्म में रहा जा सके, ऐसा है। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य के प्रवचनसार के वचन हैं।

**और दूसरा भी ( श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में ४४वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि:—**

**दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा।**
**जुगवं जह्मा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि।।**

**श्लोकार्थ : छद्मस्थों को दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है...** आहाहा! अल्पज्ञ प्राणी को अन्दर एक साथ गुण होने पर भी अल्प ज्ञान और अल्प दर्शन है, इस कारण से **( पहले दर्शन और फिर ज्ञान होता है ),...** यहाँ बात ले जाना। आहाहा! अब दया, दान, पुण्य है; धर्म नहीं - यह तो कहीं रह गया। आहाहा! अरे! प्रभु! तेरी सम्पदा, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान-दर्शन की सम्पदा, उस सम्पदा की पूर्णता में... आहाहा! छद्मस्थ प्राणी पहले

दर्शन और पश्चात् ज्ञान कर सकता है। क्योंकि अपूर्ण और अल्पज्ञ है। केवलज्ञानी के अतिरिक्त छद्मस्थ प्राणी दर्शन-ज्ञान अपनी शक्ति होने पर भी विकास में अपूर्णता है, इसलिए दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। पहले देखता है और देखने के पश्चात् उसे विशेष जानता है। आहाहा! कहाँ तक ले गये! सब निकाल डाला। अब अल्पज्ञपना निकाल डालते हैं। आहाहा!

परचीज़ के ऊपर से लक्ष्य छोड़। नारकी को कहीं पर के संयोग का दुःख नहीं है। नरक में अग्नि और शीत का पार नहीं है। धग.. धग.. धग.. धग.. अग्नि है, उसका दुःख नहीं है। उस ओर का लक्ष्य करता है, वह अटकता है, वह दुःख है। आहाहा! संयोग स्पर्श नहीं करता। संयोग का दुःख-भट्टी में पड़ा है, इसलिए दुःख है - ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि संयोग को तो वह स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श भी नहीं करता। छूता भी नहीं। आहाहा! अग्नि में हाथ डाला, तो कहते हैं कि हाथ ने अग्नि को स्पर्श भी नहीं किया है और जो पीड़ा होती है, वह अग्नि से नहीं। इसके (हाथ के) परमाणु की पर्याय ऐसी परिणमित हुई है। आहाहा! उसके कारण दुःखी है। आहाहा! तेरे संसार में अपनी सम्पदा पूर्ण है। उस सम्पदा में अपूर्णता, वह अनिष्ट है और उस सम्पदा में पूर्णता, इष्ट है। इसमें कहीं तुम्हारे हीरा-बीरा नहीं आये। आहाहा!

उनके पास दस करोड़ रुपये हैं। सरदारशहर में है न? सरदारशहर, अपने दीपचन्दजी आते थे न? उनके मामा के पास दस करोड़ रुपये। ऐसे के ऐसे सन्दूक में पड़े हों, परन्तु प्रयोग नहीं कर सके। आहाहा! पीने की वह शीशी लाये हों। वह पीने की क्या कहलाती है?... क्या कहलाती है वह? वह लड़के नहीं लेते? मिठास होवे, उसे पीते हैं न? तुम्हारे नाम भूल गये। वह पीवे, उसकी मिठास है। कहते हैं कि वह तो दुःख है। आहाहा! वह क्या कहलाती है तुम्हारे? कुल्फी। नाम भूल गये। वह कुल्फी पीवे, उसमें उसे जो... गर्मी के दिन हों और कुल्फी (पीवे)। आहाहा! यह सब किया था। पालेज से भरूच जाते थे, तब गर्मी बहुत, गर्मी में माल लेने जाते थे, तब फिर कुल्फी-बुल्फी लें और पीवें। आहाहा! वह कुल्फी पीता नहीं और आत्मा उसे छूता भी नहीं। आहाहा! आत्मा का ज्ञान वहाँ रूका, वही अनिष्ट और दुःख है। आहाहा! व्याख्या तो व्याख्या!

चाहे जो अनुकूल चीज़ दुनिया माने, वहाँ ज्ञान रूका कि यह ठीक है, यह अनिष्ट

है और यह दुःख है। उसमें से हटकर ज्ञान ज्ञातारूप से पूर्ण ज्ञान ही करे। कोई ठीक-अठीक कुछ है ही नहीं। पूर्ण ज्ञान करे, वही इष्ट है। आहाहा! कहो हरिभाई! ऐसी व्याख्या है। कभी सुनी नहीं हो। कोई चीज़ इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। आहाहा! इष्ट और अनिष्ट तेरी पर्याय है। आहाहा! जो तेरा सामर्थ्य है, उतना प्रगट नहीं करके अल्प में रहना, वह दुःख है और पूर्ण की प्राप्ति करके पूर्ण में रहना, वह आनन्द है। आहाहा! दुनिया से दूसरा प्रकार है। दूसरों को तो कठिन लगे। छूता नहीं? कहते हैं। हीरा-माणिक के हार पहिने ऐसे। लाखों रुपयों के-करोड़ों रुपयों के। चक्रवर्ती करोड़ों रुपयों के हार, करोड़ों का हार पहिने। करोड़ों रुपयों की अँगूठी हो, अँगूठी! आहाहा!

**मुमुक्षु :** वह तो इष्ट है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी इष्ट नहीं है। आहा! श्रीकृष्ण वन में गुजर गये। तृषा... तृषा... तृषा... जिनकी देव सेवा करते थे, उन्हें कोई मनुष्य पानी पिलानेवाला नहीं रहा। उनके भाई पानी लेने गये, पत्रों का (बर्तन) बनाकर (पानी लाते हैं)। वहाँ जंगल में बर्तन-वर्तन कहाँ हो? पत्रों और सली से बर्तन (दौना) बनाकर पानी लेकर जहाँ आते हैं, वहाँ भाई की देह छूट गयी। आहाहा! इतनी तृषा। वह दुःख नहीं है। आहाहा!

तेरी ऋद्धि पर में रुके, उसका नाम अनिष्ट और दुःख है, परन्तु तेरी ऋद्धि पर में नहीं रुके, वह आनन्द है। आहाहा! ऐसी व्याख्या भी सुनी नहीं हो। आहाहा! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर अनन्त तीर्थंकरों का यह कथन है। अनन्त तीर्थंकर दिव्यध्वनि द्वारा ऐसी पुकार कर गये हैं। आहाहा! वह बात शास्त्रों में रह गयी है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **छद्मस्थों को...** छद्मस्थ अथात् केवलज्ञानी नहीं, ऐसे अल्पज्ञानी को **दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है...** क्योंकि उनका ज्ञान कम और दर्शन कम है, इसलिए पहले दर्शन होता है और फिर ज्ञान होता है। आहाहा! यद्यपि श्वेताम्बर में तो ऐसा डाला है (कि) केवली को भी पहले ज्ञान और फिर दर्शन। आहाहा! यहाँ पहले दर्शन और ज्ञान। वह बात कल्पित है। केवली को पहले ज्ञान और फिर दर्शन, ऐसा नहीं होता। एक ही समय में दोनों पूर्ण होते हैं। आहाहा! अरेरे! यहाँ तक पहुँचना। सम्प्रदाय के आग्रह छोड़कर, दुराग्रह पकड़े हों, उन्हें छोड़ देना। आहाहा! सत्य हो, उसे लेना। उसमें बहुत पुरुषार्थ है, भाई! आहाहा!

**मुमुक्षु :** मोक्षतत्त्व में ही बड़ी भूल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बड़ी भूल है तत्त्व में। एक-एक तत्त्व में। नव तत्त्वों में, नव तत्त्वों में भूल है। आहाहा! क्या करे? कहाँ वाद-विवाद करे? यह तो पहले आ गया। **'नाणा कमा नाणा जीवा नाणा लब्धि'** अनेक प्रकार के जीव, अलग-अलग प्रकार के, उन्हें क्षयोपशमभाव की प्राप्ति। यह जिसे जँचा हो, वह दूसरों की बात किस प्रकार स्वीकार करेगा? एक विचारवाले सब कैसे होंगे? आहाहा! इसलिए वाद-विवाद करना नहीं, बापू! कठिन बात है।

यहाँ कहना यह (है कि) आत्मा कर्म को स्पर्श नहीं करता। और जैन का पूरा पुकार कि कर्म के कारण विकार होता है। अर र र! यह धर्म। जैन के लड़के से लेकर सब बड़े पण्डित (कहते हैं कि) विकार कर्म से होता है... विकार कर्म से होता है... विकार कर्म से होता है... ऐसा विपरीत सीखे। आहाहा!

**मुमुक्षु :** दिगम्बर में भी ऐसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ये फिर ऐसा विपरीत सीखे। आहाहा! आत्मा स्वतन्त्र है। अपनी भूल स्वयं अपने से करता है। जो कुछ निमित्त को अवलम्बता भी नहीं। निमित्त पर लक्ष्य करता भी नहीं। आहाहा! अपना अल्पपना है, वह दुःख है। आहाहा!

इसलिए छद्मस्थ को... छद्मस्थ अर्थात् आवरण में रहे हुए प्राणी को पहले दर्शन होता है, पश्चात् ज्ञात होता है। आहाहा! है? **दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है ( अर्थात् पहले दर्शन और फिर ज्ञान होता है ), क्योंकि उनको दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते;...** यहाँ तक जाना। आहाहा! जानने और देखने का उपयोग एकसाथ छद्मस्थ को, अल्पज्ञ प्राणी को नहीं होता। आहाहा! उसकी ऋद्धि एकसाथ भरी हुई है। ज्ञान और दर्शन तो एकसाथ शक्ति में रहा हुआ है, तथापि व्यक्त में अपूर्णता के कारण पहले दर्शन और पश्चात् ज्ञान (होता है)। आहाहा! यह भी जहाँ संसार को खटकता है। अब उसे यहाँ तक आकर यह छुड़ाना... आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से, अपने तत्त्व से, अपनी सत्ता के सत् से पूर्ण भरपूर है। उसे प्रगटता में अल्प दर्शन और ज्ञान के कारण, पहले दर्शन और ज्ञान पश्चात्... आहाहा! यह दुःख है। यह अल्पज्ञता, वह दुःख है। आहाहा! है?

**वे दोनों युगपत् होते हैं।** भगवान को। इसे (छद्मस्थ को) दोनों उपयोग युगपद्

नहीं होते। **केवलीनाथ को...** आहाहा! यह क्या कहते हैं, प्रभु! तुझमें इतनी सम्पदा है। प्रभु! अल्प रहे, वह वस्तु शक्ति नहीं। पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण से पूर्ण भरपूर, वह पूर्ण भरपूर है, वैसी पूर्ण पर्याय प्रगट हो, ऐसी ताकतवाला तू है। उसे अल्प न मान, उसे अल्पज्ञ न मान, उसे विपरीत न मान। आहाहा! इस मान्यता में तो बिल्कुल विपरीतता मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी पूर्ण शक्ति अन्दर भरी है। वह पर्याय में पूर्ण न आवे, तब तक दर्शन और ज्ञान अल्प के कारण दोनों का उपयोग एकसाथ नहीं हो सकता। अल्पता के कारण दर्शन-ज्ञान उपयोग एकसाथ नहीं हो सकता। केवलज्ञानी नाथ को... है ?

**केवलीनाथ को...** आहाहा! केवलीनाथ है। अपने अनन्त गुण का नाथ है, लोकालोक का नाथ है। आहाहा! जानते हैं न ? आहाहा! परन्तु जँचे कैसे ? एक जरा गन्ने का साठा मीठा ठीक आया जहाँ, वहाँ गलगलिया होकर रुके। अब उसे ऐसा कहना कि प्रभु! तू अनन्त आनन्द का धनी है। प्रभु! तुझमें अनन्त आनन्द भरा है। इस आनन्द में भी अपूर्णता, वह दुःख है। आहाहा! यहाँ तक जाना... यहाँ बाहर के उत्साह का पार नहीं होता, बाहर की प्रवृत्ति का उत्साह, यह उत्साह और हर्ष। आहाहा! वह दशा जब तक न हो; पूर्ण है और पूर्ण जब तक न हो... आहाहा! तब तक प्राणी, प्रभु! तू दुःखी है। पूर्ण है, आहाहा! ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त गुण पूर्ण भरे हैं। आहाहा! उन्हें कोई क्षेत्र की आवश्यकता नहीं कि बहुत बड़ा क्षेत्र चाहिए तो अधिक गुण रह सकें। आहाहा! इस अल्पक्षेत्र में, अरे! अंगुल के असंख्य भाग में निगोद के जीव में, अनन्त जीवों में एक-एक जीव में अनन्त आनन्दादि पूर्ण भरा है। शक्ति पूर्ण भरी है। आहाहा! वीतराग की बात एक-एक बात अलग है। सुनने को मिली नहीं। बाहर में सब मानकर बैठे। जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान केवली को तो एक साथ युगपद् होता है। है न ?

## श्लोक-२७३

और ( इस १६० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं ):—

( स्रग्धरा )

वर्तेते ज्ञान-दृष्टी भगवति सततं धर्म-तीर्थाधिनाथे,
सर्वज्ञेऽस्मिन् समन्तात् युगपदसदृशे विश्वलोकैनाथे।
एतावुष्णप्रकाशौ पुनरपि जगतां लोचनं जायतेऽस्मिन्,
तेजोराशौ दिनेशे हत-निखिल-तमस्तोमके ते तथैवम्।।२७३।।

( वीरछन्द )

जो अनुपम हैं धर्मतीर्थ के नायक सकल लोक के नाथ।
इन्हें सर्वतः वर्ते युगपत् नितप्रति दर्शन-ज्ञान प्रकाश॥
तिमिर समूह विनाशक रवि में युगपत ऊष्ण और परकाश।
जगजन पाते नेत्र तथैव उन्हें युगपत दृग-ज्ञान प्रकाश॥२७३॥

[ श्लोकार्थ : ] जो धर्मतीर्थ के अधिनाथ ( नायक ) हैं, जो असदृश हैं ( अर्थात् जिनके समान अन्य कोई नहीं है ) और जो सकल लोक के एक नाथ हैं, ऐसे इन सर्वज्ञ भगवान में निरन्तर सर्वतः ज्ञान और दर्शन युगपत् वर्तते हैं। जिसने समस्त तिमिरसमूह का नाश किया है, ऐसे इस तेजराशिरूप सूर्य में जिस प्रकार यह उष्णता और प्रकाश ( युगपत् ) वर्तते हैं और जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं ( अर्थात् सूर्य के निमित्त से जीवों के नेत्र देखने लगते हैं ), उसी प्रकार ज्ञान और दर्शन ( युगपत् ) होते हैं ( अर्थात् उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान को ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं और सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है )।२७३।

---

श्लोक -२७३ पर प्रवचन

---

और ( इस १६० वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं ):—

**वर्तेते ज्ञान-दृष्टी भगवति सततं धर्म-तीर्थाधिनाथे,**
**सर्वज्ञेऽस्मिन् समन्तात् युगपदसदृशे विश्वलोकैनाथे।**
**एतावुष्णप्रकाशौ पुनरपि जगतां लोचनं जायतेऽस्मिन्,**
**तेजोराशौ दिनेशे हत-निखिल-तमस्तोमके ते तथैवम्।।२७३।।**

आहाहा! इस श्लोक में साधारण को अच्छा नहीं लगता। मुनिराज को ऐसा लगता है, चार श्लोक कहे। एक श्लोक आधार के लिये, चार दिये। भाई! प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं है। यह महिमा कहीं लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। कहीं से वह महिमा मिले, ऐसी नहीं है। महिमा से भरपूर है न, भगवान! आहाहा! स्त्री या गधा, या देव, इस शरीर को मत देख। आहाहा! अथवा नारकी का शरीर, उसे मत देख। उसमें आत्मा रहा है, वह आत्मा कौन है? आहाहा! उसके चैतन्य चमत्कार के अपार का पार नहीं मिलता। आहाहा!

कहते हैं कि विकसित ज्ञान में अल्प ज्ञान होवे तो दु:खी है। आहाहा! तो दूसरी चीज़ दु:खी है, यह है कहाँ? आहाहा! २७३

**श्लोकार्थ : जो धर्मतीर्थ के अधिनाथ ( नायक ) हैं,...** धर्मतीर्थ के नायक। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव अरिहन्त परमात्मा। आहाहा! **धर्मतीर्थ के अधिनाथ ( नायक ) हैं, जो असदृश हैं ( अर्थात् जिनके समान अन्य कोई नहीं है )...** सदृश और असदृश। उनके समान-सदृश कोई है नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ को जहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ; अन्दर वह पड़ा है, वह प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। नहीं है, उसमें से लाना होवे तो नहीं आता। यह तो भरपूर है न, भगवान! ऐसा प्रभु जिसे पर्याय में प्रगट हुआ है, वह अधिनाथ है। आहाहा! वह धर्मतीर्थ का नायक है। वह असदृश है। ( अर्थात् ) उनके समान अन्य कोई नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो पाँच-पच्चीस लाख, करोड़-दो करोड़ मिले... वहाँ कहा न? भूल गये। वहाँ नैरोबी में चार सौ पचास तो करोड़पति। चार सौ पचास करोड़पति और पन्द्रह अरबपति। पाँच-दस लाख, पाँच-दस लाख होवे, वह गरीब मनुष्य। ऐसे तो साधारण कितने ही। आहाहा! लोग बाहर का मान बैठे मानो... आहाहा! हम पैसेवाले हैं, हम सुखी हैं, हमें पुण्य फला है। बात सच्ची, पुण्य फला है, परन्तु अभी फल है, वह पाप है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** दूसरे पैसेवाले के सामने देखते हैं तो अधिक दु:खी हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो स्वयं अपने को... उनके सामने देखे, इसलिए नहीं। वह तो स्वयं रागी है, इसलिए दुःख उत्पन्न करता है। उन्हें देखना, वह तो ज्ञेय है। ज्ञेय को देखने से उसके कारण नहीं। आहाहा! इसे राग-द्वेष होते हैं, वह ज्ञेय के कारण से नहीं। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। आहाहा! बहुत वीतरागमार्ग... ओहोहो! दुनिया में, चौदह ब्रह्माण्ड में वीतराग-सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है। कोई शरण नहीं है और कोई सत्य नहीं है। आहाहा! परन्तु मूढ़ता बहुत, प्रभु! इसकी गम्भीरता का पार नहीं मिलता। आहाहा!

शरीरमात्र में रहा हुआ, उसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. चाहे जितने अनन्त करो, अनन्त को अनन्तगुणा गुणन करो तो भी उन गुणों का पार नहीं आवे, इतने गुण हैं तेरे पास। आहाहा! अनन्त को अनन्त से एक बार गुणा करो। ऐसे जो अनन्त हैं, उतनी बार उस अनन्त को गुणकर गुणा करो। आहाहा! एक पाँच और पाँच के साथ गुणा किया तो पच्चीस हुए। वापस पच्चीस को पच्चीस गुणा करने पर संख्या बढ़े, वैसे अनन्त को अनन्तगुणा गुणन कर डालो तो भी पार न आवे, ऐसे अनन्त गुण हैं, प्रभु! आहाहा! तुझमें चैतन्यरत्न भरे हैं, नाथ! भगवान को प्रभु... आहाहा! उसे यह हीनदशा नहीं पोसाती। आहाहा! हीनदशा में प्रसन्नता नहीं पोसाती, नाथ! आहाहा! अधिक दशा पूर्ण हो, उसे तो राग होता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो किंचित् थोड़ा ज्ञान का उघाड़ हो, वहाँ अभिमान चढ़ जाता है। हमको आता है और हम पण्डित हैं। प्रभु! पण्डित किसे कहना? यह पाठ आता है न? उसे पण्डित और शूरवीर कहना कि जिसे समकित हो, उसे। पाठ में आता है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में आता है। पूर्णानन्द के नाथ को पहिचान कर प्रतीति करना और अनुभव करना, इसके जैसा कोई बड़ा नहीं है। आहाहा! इस दुनिया में बाहर की चीज़ की कोई महिमा ले जाए, ऐसी कोई चीज़ ही नहीं है। बाहर की चीज़ तो ज्ञान में पर व्यवहार ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। आहाहा! उसके बदले उस परज्ञेय को व्यवहाररूप से जाननेयोग्य की मर्यादा में (नहीं रखकर), उस मर्यादा को तोड़कर 'यह चीज मेरी है, मैं इसका हूँ' (-ऐसा मानता है), प्रभु! इसका क्या फल आयेगा? भाई! आहा! लोगों को ख्याल नहीं आता कि ऐसा क्या? परन्तु महापाप है। आहाहा! महा अनन्त-अनन्त गुण का धनी, उसे अल्पज्ञ स्वीकार कर

प्रसन्नता में रहना और खुशी का वेदन करना... आहाहा! इसके जैसा कोई पाप नहीं है। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

**धर्मतीर्थ के अधिनाथ ( नायक ) हैं, जो असदृश हैं ( अर्थात् जिनके समान अन्य कोई नहीं है ) और जो सकल लोक के एक नाथ हैं, ऐसे इन सर्वज्ञ भगवान...** आहाहा! ऐसा (तू) सर्वज्ञ भगवान ही है, प्रभु! शक्ति और स्वभाव से तो ऐसा ही है। यह तो प्रगट की बात है। परन्तु यह है, वह आया है या नहीं, वह आया? आहाहा! जो कुँए में हो, वह हौज में आता है या कुँआ खाली हो, और पानी हौज में आता है? आहाहा! प्रभु! तुझे भरोसा नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरे आत्मा में अनन्त-अनन्त सम्पदा भरी है। आहाहा! उस सम्पदा के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन भी सड़े हुए तृण जैसा दिखता है। ऐसा सम्पदा का धनी, यह भीख माँगे! आहाहा! पैसा लाओ, स्त्री लाओ, पुत्र लाओ, इज्जत लाओ, यह लाओ... यह लाओ... कितना लावा लेना है तुझे अग्नि का? ये अग्नि का लावा है। आहाहा! दुनिया से सब उल्टा है। आहाहा!

**ऐसे इन सर्वज्ञ भगवान में निरन्तर सर्वतः ज्ञान और दर्शन युगपत् वर्तते हैं।** उन्हें तो दर्शन और ज्ञान एक समय में होते हैं। छद्मस्थ को एक समय में नहीं होते। ज्ञान का उघाड़ पूरा नहीं है, इसलिए उसे दर्शन पहले और ज्ञान पश्चात्। आहाहा! यद्यपि श्वेताम्बर शास्त्र में भी ऐसा डाला है। पहले ज्ञान होता है, फिर दर्शन। ऐसी तो सब कल्पित बातें की हैं। आहाहा! क्या हो? उन्हें दुःख लगे। उनके शास्त्रों को कल्पित कहना, वह दुःख लगे, प्रभु! माफ करना। तेरी सम्पदा की बातें करते हुए विरुद्धता की बात जरा आ जाती है। प्रभु! तू यह सामर्थ्यवाला है, नाथ!

धर्मी की भावना में तो कोई विरोधी या अविरोधी नहीं है। सब भगवान हैं और सब भगवान हो जाओ। आहाहा! प्रभु! तुम भगवान हो और भगवान हो जाओ। आहाहा! आचार्य का हृदय तो देखो! द्रव्यसंग्रह में यह कहा है। आहाहा! तू तो आठ कर्मरहित हो जा। क्योंकि वह चीज़ ही है, शक्ति और स्वभाव से सब भगवान हैं, तो भगवान हो जाओ। आहाहा! कोई भी नरक और मनुष्यरूप न रहो। आहाहा! क्योंकि मैं भी उसरूप न रहूँ। अल्परूप मानने से मुझे भी दुःख लगे तो प्रभु! तुझे भी दुःख लगेगा; और तुझे दुःख लगे, वह कोई प्रसन्न होने का रास्ता नहीं है, प्रभु! तुझे दुःख लगे, वह कोई ठीक नहीं है। उस

दु:ख को मिटाने के लिये तू तैयार हो जा। आहाहा! जैसा है, वैसा तैयार हो जा, ऐसा कहते हैं। देखा न?

**जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं...** अब क्या कहते हैं? प्रभु तो इतना प्रगट हुआ, परन्तु जगत को ज्ञान का नेत्र मिलता है। सूर्य प्रगट हुआ तो सूर्य के प्रकाश में आँख को देखने का मिलता है। इसी तरह तुझमें-प्रकाश में तुझे देखने का मिलेगा। प्रभु! आहाहा! कन्दमूल का एक टुकड़ा, उसमें असंख्यवें भाग में... उसमें अनन्त भगवान विराजते हैं। आहाहा! किस माप से माप (करे)? इस स्वभाव की महिमा और स्वभाव की शक्ति का सामर्थ्य ऐसा होता है, ऐसा जिसे अभी अनुमान में भी न बैठे... आहाहा! उसे ऐसा नाथ प्रगटे कहाँ से?

यहाँ तो यह कहते हैं, **जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं...** भगवान को केवलज्ञान हुआ तो लोगों को ज्ञान मिला। आहाहा! है? **जिसने समस्त तिमिरसमूह का नाश किया है, ऐसे इस तेजराशिरूप सूर्य में जिस प्रकार यह उष्णता और प्रकाश ( युगपत् ) वर्तते हैं और जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं ( अर्थात् सूर्य के निमित्त से जीवों के नेत्र देखने लगते हैं ), उसी प्रकार ज्ञान और दर्शन ( युगपत् ) होते हैं...** भगवान को। आहाहा! इतना महात्म्य सुने, वहाँ कहते हैं, तुझे ज्ञान हो जाए। आहाहा! ऐसे भगवान है कि उन्हें एक समय में ज्ञान और दर्शन उघड़ गये हैं। आहाहा! ऐसा सुनते हुए, प्रभु! तुझे विस्मय आ जाये, ज्ञान आ जाये।

**( अर्थात् उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान को ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं और सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से... )** देखो! निमित्त से का अर्थ? उससे कुछ हुआ नहीं। गड़बड़ यहाँ करते हैं। **जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है।** आहाहा! भगवान सर्वज्ञ प्रगट होते हैं, तब जगत के प्राणी के आँख-नेत्र खुल जाते हैं। ओहो! इस देह में रहा हुआ भगवान आत्मा तीन काल-तीन लोक को जाने। उसकी शक्ति दूसरी कितनी अन्दर है! ऐसे दूसरे को नेत्र मिलें, ऐसी वह वस्तु है। ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)